



कभी-कभार

अशोक वाजपेयी

लोहिया पर विचार

इधर साहित्य अकादेमी ने दो असाधारण काम किए हैं, लीक से हट कर। पहला है सामसुंग के सहयोग से नए पुरस्कारों की स्थापना और दूसरा अपने वार्षिक साहित्योत्सव में डॉ राममनोहर लोहिया पर तीन दिनों का राष्ट्रीय परिसंवाद। पहले की उचित ही, भले अधिकतर हिंदी लेखक समाज द्वारा, निंदा हुई। लेकिन इस कारण दूसरे आयोजन के महत्त्व को अलक्षित नहीं जाना चाहिए। यह आयोजन इसलिए असाधारण है कि डॉ लोहिया राजनेता के अलावा एक चिंतक तो थे, लेकिन साहित्यकार नहीं। उनका साहित्य से, अपने समय के अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों से गहरा जुड़ाव और लगाव था। गांधी और नेहरू के बाद वे ऐसे एकमात्र राजनेता थे, जिनके विचारों और भाषा ने साहित्य पर व्यापक प्रभाव छोड़ा है।

अगर बीसवीं शताब्दी का एक केंद्रीय अभिप्राय साधारण की महिमा का रहा है तो उसे विन्यस्त करने में लोहिया की बड़ी भूमिका रही है। स्वतंत्रता के बाद वे ऐसे मूर्तिभंजक थे, जिन्होंने रूढ़ छवियों को ध्वस्त किया और सार्वजनिक जीवन में गांधी-दृष्टि और व्यवहार का हमारे समय के लिए पुनराविष्कार किया। सकर्मकता के कई विकल्प विन्यस्त किए। निराशा के भी कर्तव्य खोजे। यथास्थिति को बदलने के नए रास्ते ढूँढ़े और बनाए। वे इसका भी अनोखा उदाहरण हैं कि जो विचार बदलता रहता है और नई परिस्थितियों के अनुकूल विकल्प गढ़ता रहता है वही असली जिजीविषा का आधार बनता है। और किसी भी समय की खरी और परिवर्तनकारी राजनीति ऐसी वैचारिक पुष्टि और परिवर्तनशीलता से सच्ची हो पाती है। वह सत्ता भी पाए, पर हारती नहीं है।

लोहिया कभी सत्ता में नहीं आए और उनके बाद समाजवादिनों ने उनके आदर्शों और चिंतन को निंदनीय रूप से भ्रष्ट और विकृत किया। लेकिन इसके बावजूद लोहिया-विचार आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। गांधी के बाद, नेहरू से कहीं अधिक, लोहिया ही विचारणीय हैं। स्वतंत्रता के बाद वे अकेले ऐसे नेता रहे हैं जिन्होंने विचार और कर्म के बीच की फाँक को कम से कम किया। वे विचारहीन कर्म और कर्महीन विचार दोनों से अपने को यत्नपूर्वक दूर रखे रहे। यह सोचना सुखद है कि उनके यहां अगर विचार कर्म है तो कर्म भी विचार है।

लोहिया साहित्य, कलाओं और संस्कृति को न सिर्फ आदर-सम्मान देते थे बल्कि अपने समकालीन लेखकों-कलाकारों के प्रति उनका व्यवहार हमेशा समकक्षता का रहा। किसी और राजनेता ने इस वर्ग से ऐसा सहज संवाद स्थापित नहीं किया जैसा कि लोहिया ने किया था। देश के अनेक साहित्यिक और कला केंद्रों में लोहिया की सक्रिय उपस्थिति थी। उन्हें इसका सजग अहसास था कि राजनीति सर्वग्रासी हो जाएगी अगर उसका सर्वव्यापी संस्कृति से अटूट रिश्ता और संवाद न बने।

एक बार उनसे यह पूछने पर कि अपने गहरे नेहरू-विद्वेष के कारण वे नेहरू के बाबा को चपरासी बता कर ओछी हरकत कर रहे हैं, उन्होंने स्पष्ट किया था कि अगर मोतीलाल नेहरू की शान-शौकत, पेरिस में उनके कपड़े धुलने जैसी किंवदंतियों के बजाय यह बताया जाता कि नेहरू का उत्कर्ष उनकी पारिवारिक साधारणता से हुआ था तो साधारण लोगों का मनोबल किसका उंचा उठता। वे सोच पाते कि एक चपरासी का पोता भारत का प्रधानमंत्री हो सकता है। तथ्य का पता नहीं, पर यह कुतर्क नहीं था।

रजा-88

यह कहना कठिन है कि क्या है जो इतनी उमर और शारीरिक अशक्तता के बावजूद उन्हें हर बरस भारत खींच लाता है: भारत-प्रेम, कला-सक्रियता, मित्रों से मिलने-बतियाने का उत्साह। पर पेरिस-बसे भारतीय चित्रकार सैयद हैदर रजा पिछले दो दशकों से हर बरस कुछ महीनों के लिए भारत आते रहे हैं। इस बार भी वे इन दिनों यहीं हैं और बाईस फरवरी को उनकी अट्ठासीवीं वर्षगांठ मनाई गई जिसमें रामकुमार, कृष्ण खन्ना, सतीश गुजराल से लेकर योगेंद्र त्रिपाठी, मनीष पुष्कले आदि कलाकार शामिल हुए: हिंदी के भी कई लेखक केदारनाथ सिंह, पुरुषोत्तम अग्रवाल, कैलाश वाजपेयी आदि।

इस अवसर पर रजा के उन चित्रों की एक बेहद आकर्षक प्रदर्शनी भी कुछ घंटों के लिए लगाई गई, जिसमें पांच निजी संग्राहकों के संग्रह से रजा के चित्र दिखाए गए। इनमें से कई चित्र ऐसे हैं जो कि सार्वजनिक रूप से शायद पहली बार ही दिखाए गए हैं। ऐसे भी कई थे, जिनकी स्वयं रजा को याद नहीं रह गई है। पर रजा के रंगों का वैभव, उनकी अपार सुषमा, उनके सुघर संयोजन, उनकी संकोचहीन पर बेहद संयमित छटा, उनका सीधे संप्रेषित होने वाला स्पंदन सब एक साथ, एक बार फिर, अनुभव करने, साक्षात् करने का सुयोग हुआ जो उस शाम को स्मरणीय बना गया।

कई बार इस पर थोड़ा टिठक कर सोचने का मन करता है कि क्या यह सिर्फ कला की जीवनी-शक्ति है, जो नब्बे पार के मकबूल फिदा हुसैन, नब्बे के नजदीक के रजा, अस्सी के पार आ चुके रामकुमार, कृष्ण खन्ना और अकबर पदमसी को अभी तक सक्रिय और कला-सशक्त बनाए हुए है? इनमें से प्रायः हरेक का कला जीवन आरंभ में, युवावस्था के कई वर्षों में, संघर्षमय और कठिन रहा है। क्या उस आरंभिक संघर्ष ने जो सामाजिक आर्थिक होने के साथ-साथ कलात्मक भी था, इन मूर्धन्यों को उनकी अदम्य जिजीविषा दी है? उनकी असंदिग्ध मूर्धन्यता की चकाचौंध में इस आरंभिक संघर्ष की आंच और गरमी ध्यान से देखें तो अब भी पहचानी जा सकती है। कई बार जल्दी ही सफलता पाए युवा कलाकारों को देख कर यह आशंका होती है कि उनकी संघर्ष-क्षीणता उनकी उपलब्धि को कब तक बरकरार रख पाएगी। बाजारू रोशनी में पड़ जाते चेहरे अगर वह रोशनी मंद पड़ी तो कहीं धुंधले न दम जाएं।

रजा को कला के क्षेत्र में 'कीमत' और 'मूल्य' को लेकर जो सम्भ्रम हुआ है उसको लेकर गहरी चिंता होती रही है। वे इस बात से चिढ़ जाते हैं अक्सर जब कोई उनसे उनकी किसी कृति की नीलामी में लगी करोड़ों की बोली का उत्साह से जिक्र करता है। वे खीझ कर कहते हैं कि कीमत छोड़िए, उस कलाकृति में कुछ काम की बात है या नहीं यह बताइए।

फोटो-संगीत

एक भीमकाय चट्टान की बगल में वीणा लेकर बैठे कर्नाटक वादक बालचंद्र, अपने देवास के घर में बरामदे के झूले पर बैठे कुमार गंधर्व, जबूनी मेहता के संचालन में उनसे हिदायत लेते रविशंकर, धारवाड़ के गांव में एक खेत के पास ट्रैक्टर की बगल में खड़े मल्लिकार्जुन मंसूर, सत्य साईं बाबा से आशीर्वाद लेती एमएस सुब्बालक्ष्मी, अपने गुरु-पिता इनायत खां की मजार पर दुआ मांगते विलायत खां, अपने एक पोते को दुलारते बिस्मिल्ला खां, अपने बेटे के साथ किशोरी अमोणकर, गेटवे ऑव इंडिया पर ताज होटल के सामने बांसुरी बजाते हरिप्रसाद चौरसिया, पुणे के नजदीक किसी पहाड़ी पर अपनी मसीदीज कार का दरवाजा खोल कर खड़े भीमसेन जोशी, अखबार बांचती बीवी की बगल में खिड़की के पास खड़े अल्ला रक्खा खां अपने बेटे जाकिर हुसैन को कोई ताल सिखाते हुए आदि छवियां कैमरे में दर्ज करते रहे हैं फोटोग्राफर रघु राय। 'इंडिया टुडे' में एक जमाने में संगीतकारों पर उनके फोटो-निबंधों की हममें से कइयों को याद होगी। रघु राय ने शास्त्रीय संगीतकारों को उनके गायन-वादन के दौरान भोरविभोरता से लेकर उनके दैनंदिन जीवन की निपट साधारणता में फोटो-दर्ज किया है। कुछ चुने हुए फोटोग्राफों की एक प्रदर्शनी वडोरा गैलरी ने ललित कला अकादेमी की कला-वीथिकाओं में आयोजित की है। इन मूर्धन्यों में से कई अब दिवंगत हैं: उनकी ऐसी छवि-माला देखना इसलिए और अन्यथा भी मार्मिक अनुभव है। यह भी साफ नजर आता है कि किनमें जीवन की लय और संगीत की लय एकाकार है और किनमें जीवन-लय संगीतमय का लगभग विलोम है। सब अपने संगीत, अपनी साधना, अपने जीवन में कितने अलग-अलग हैं और हमारे शास्त्रीय संगीत में भी दृष्टि-शैली-भंगिमा की कितनी बहुलता समाई हुई है। प्रदर्शनी एक अनोखी प्रणति है: चित्रों में जो आप देखते हैं उसे सिर नवाने का मन होता है।

हार्पर कालिंस ने रघु राय के विशाल संग्रह से तेरह संगीतकारों पर उनके फोटोग्राफों का एक चयन बहुत ही चित्ताकर्षक रूप से एक बड़ी पुस्तक 'इंडियाज ग्रेट मास्टर्स' नाम से प्रकाशित किया है। श्वेत-श्याम फोटोग्राफी का अद्भुत कमाल इस पुस्तक में दिखाई देता है। एक फोटो-कलाकार का, जुनून की हद तक पहुंचा हुआ, संगीत-प्रेम उसमें शुरू से लेकर अंत तक छाया हुआ है। इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा मुझे करनी चाहिए उतनी करने में इसलिए सकुचा रहा हूँ कि उसमें इन तेरह संगीतकारों पर, शास्त्रीय संगीत के अपने निर्लज्ज प्रेम और तकनीकी अल्पज्ञता से, मैंने निबंध लिखे हैं। रघु राय की इस तरह की थोड़ी-सी संगत करना मुझे अच्छा लगा, यह मानने में मुझे कोई संकोच नहीं है।